Golden Research Thoughts ISSN 2231-5063 Impact Factor : 3.4052(UIF)
Volume-4 | Issue-10 | April-2015 Available online at www.aygrt.isrj.org

भक्तिकाल के कवियों में सगुण एवं निर्गुण भक्ति धारा में रसात्मक बिम्ब

मोहन सिंह

प्रवक्ता : हिन्दी , रा.इ.का. नारायण नगर सिनांई ,जिला चमोली गढ़वाल (उत्तराखण्ड़)।

Authors Short Profile

Mohan Singh is working as a Lecturer at Department of Hiindi in Ra.E.Ka. Narayan Nagar Sinai, Chamoli Gadwal, Uttarakhand. He has completed M.A., B.T.C., B.Ed., NET. He has teaching experience of 15 years.

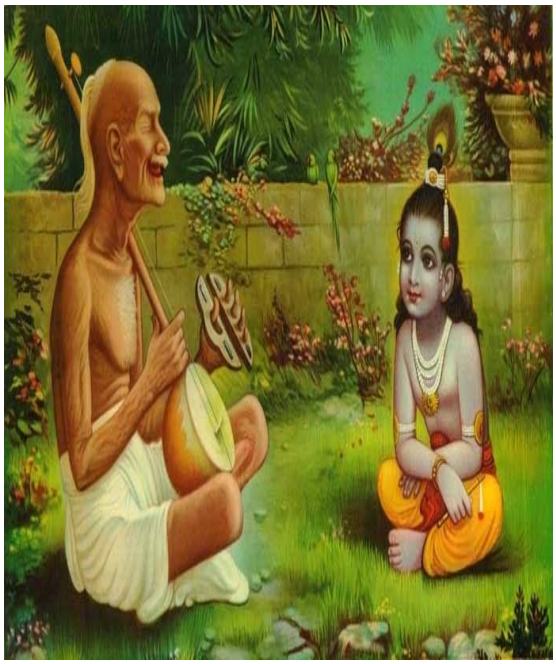

सारांश

भारतवर्ष में यवन आक्रमण कारियों के आगमन से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि स्थितियों पर विपरीत प्रभाव पड़ने लग गया था। इन भाक्रान्ताओं ने देवालयों को ध्वंस करके यहॉ की सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताओं पर कुठाराघात आरम्भ कर दिया था। सोमनाथ के मन्दिर को महमूद गजनवी ने एक, दो बार नही वर्न सत्रह बार लूटा। यह सब देखकर जनता निराश हो गई। उनका धार्मिक विश्वास डगमगाने लगा।

देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के ह्रदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। हिन्दू के सामने ही उसके देव मन्दिर गिराए जाते थे। देव मूर्तिया तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरूषों का अपमान होता था। और वे कुछ भी नही कह सकते थे, और न ही बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया। तग परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नही रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही।

प्रस्तावना

अपनी पोरूष शक्ति से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की और ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नही था। ऐसे समय में समग्र भारत में एक आन्दोलन संतों द्वारा किया गया। जो भक्ति काल के रूप में जाना जाता है। यह देशव्यापी आन्दोलन पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक संत, महात्माओं, भक्त और ज्ञानियों ने चलाया। इससे जनता के हृदय में आस्था का दीपक प्रज्जवलित होकर घना अंधकार छॅटने लगा। भक्तिकालीन साहित्य की विशेषताओं से प्रभावित होकर विद्वान इसे हिन्दी साहित्य के स्वर्ग युग की संज्ञा से विभूषित करते हैं।

भक्तिकाल के कवियों में सगुण एवं निर्गुण भक्ति धारा में रसात्मक बिम्ब

आदिकाल की कविता राज्याश्रित कवियों की देन थी लेकिन ईसा की 14वी शताब्दी से पूर्व ही हिन्दी काव्य धारा में एक नवीन परिर्वतन प्रारम्भ हुआ। कवियों ने राज्याश्रय की चिन्ता से मुक्त होकर ईश्वर के प्रति अपनी इच्छा एवं आस्था की भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया। भागवत धर्म के प्रचार और प्रसार के फलस्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात होने लगा और आगे चलकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भक्तिकाल' के नाम से जाना जाने लगा। लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण तत्कालीन भक्ति भावना लोक प्रचलित भाषाओं में भी अभिव्यक्ति होने लगी। दक्षिण से रामानुज प्रवृत्ति आचार्य भक्ति की जिस पवित्र भावना को लाए वह अनुकूल परिस्थिति पाकर पल्लवित होने लगी।

भक्तिकाल का आरम्भ दिल्ली के सुल्तान बिन तुगलक के शासनकाल में होने लगा था।

भक्तिकाल में दक्षिण भारत में अनेक दार्शनिक सिद्वान्त पनप रहे थे। उन दार्शनिक सिद्वान्तों के आधार पर उत्तर में सरल भक्ति–भावना का रामानन्द तथा बल्लभचार्य के बीजारोपण किया। साम्प्रदायिक अन्धविश्वास के माधिक्य से ढ़ोग और आडम्बरों की प्रचुरता के कारण पाप की कलुषित भावनाएॅ जोरों पर थी। पण्डित और मौलवी धर्म की मनमानी व्याख्या करके हिन्दू और इस्लाम धर्म को परस्पर विरोधी बना रहे थे। धर्माचार के नाम पर अनाचार और मिथ्याचार पनपने लगा था। ऐसे समय में शासको की विचारधारा चाहे कुछ भी रही हो। परन्तु जनसामान्य और मुसलमान सन्त शक्ति के अभिलाषी थे। इसलिए उन्होने अपने विचारो को भारतीय तक पहुॅचने का अथक प्रयत्न किया।

निर्गुण भक्ति धारा में ब्रहम (ईश्वर) के निराकार स्वरूप की उपसना की विधि अपनाई गई। निर्गुण भक्त कवि निर्गुण ब्रहम में विश्वास करते हैं। भारत में निर्गुण भक्तिधारा सत्त प्रवाहशालिनी रही है। जिसका समय–समय पर अनेक सन्त और महात्मा प्रतिपादन करते आए साधना पक्ष को लेकर चार प्रमुख मार्ग प्रचलित थे।

1. **योग मार्ग**
2. **कर्म मार्ग**
3. **ज्ञान मार्ग**
4. **भक्ति मार्ग**

योग मार्ग और कर्म मार्ग का बौद्ध धर्म तथा नाथपंथ में समावेश हो गया। जिसका समन्वित स्वरूप निर्गुणोपासना के रूप में मुखरित हुआ भक्ति काल में निर्गुण भक्तिधार के दो रूप हमारे पक्ष आते हैं।

(क) ज्ञानश्रयी शाखा

(ख) प्रेममार्गी शाखा

ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग के दो रूप हैं जो विरोधी न होकर परस्पर सम्बद्ध है। ज्ञान की अनुभूति ही भक्ति है। ज्ञान मार्ग पर चलने वाले आचार्यो ने भी ज्ञान के अनुभूति पक्ष पर बल दिया है। बिना अनुभूति का ज्ञान मात्र वाक्य ज्ञान है। जिससे कुछ भी सिद्ध नही होता। भक्ति को विद्या माया मानने वाले तथा ज्ञान मार्ग को ही एक मात्र सच्ची साधना के रूप में स्वीकार करने वाले आचार्य शंकर ने भी ज्ञान के अनुभूति पक्ष पर बल दिया है। ''अहम ब्रहमास्मि'' का ज्ञान मात्र तो निष्फल ही रहता है। सिद्ध तो तब होती है। जब यह ज्ञान अनुभव में पर्यवसित हो जाता है। अनुभवावसानत्गत ब्रहमज्ञानस्य आचार्य शंकर का यह स्पष्ट मत है कि जब तक ज्ञान का अनुभव में अवसान नही होता तब तक वह निस्सार है। ज्ञान मार्ग में अनुभूति की इस स्वीकृति के आलोक में निर्गुण भक्ति के स्वरूप पर विचार किया जाये तो उसका सन्तुलित विवेचन और मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है।

अवतार वाद को स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप सगुण भक्ति को एक साकार आलम्बन मिल जाता है। जिसके कारण उसमे सामान्य अशिक्षित व्यक्ति भी सहज ही स्वीकार कर सकता है। निर्गुण भक्ति का आलम्बन निराकार है। फलस्वरूप वह जनसाधारण के लिए ग्राहय नही हो

सकती। सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से सगुण भक्ति निर्गुण भक्ति की अपेक्षा कही अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु इसी आधार पर निर्गुण भक्ति की सत्ता या महत्व के विषय में सन्देह नही किया जाना चाहिए। यह सत्य है कि सगुण भक्ति पर आस्था रखने वाले साधकों ने निर्गुण भक्ति को लेकर तरह–तरह की शंकाए उठायी है। उनका मूल तर्क यह कि निर्गुण ब्रहमज्ञान का विषय तो हो सकता है। किन्तु भक्ति का नही। क्योंकि भक्ति तो किसी साकार, मूर्त और विशिष्ट के प्रति ही उन्मुख हो सकती है। सामान्य जनता का विश्वास और आचरण भी इसी तर्क की पुष्टि करता दिखायी देता है। इसी समस्या पर विचार करते हुए पहले यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि भक्ति का तात्विक स्वरूप क्या है।

इसी संबंध में यह माना जाता है कि स्नेह पूर्वक ध्या नही भक्ति है। प्रश्न यह है कि यदि स्नेहपूर्वक ध्या नही भक्ति है तो निर्गुण की भक्ति या स्नेहपूर्वक ध्यान क्यों नही किया जा सकता है।

सामान्य रूप से यह माना जाता है कि निर्गुण ब्रहम का संबंध ज्ञान मार्ग के साथ है, और सगुण ब्रहम के भक्ति के साथ।

इसलिए जब कभी कोई निर्गुण ब्रहम की बात करता है तो श्रोता का ध्यान नैसर्गिक रूप से ज्ञान मार्ग की ओर जाता है। भक्ति मार्ग की ओर नही। और इसी प्रकार सगुण ब्रहम का उल्लेख करते ही भक्ति मार्ग अपनी समग्र पूजा–विधि के साथ उपस्थित हो जाता है। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि भक्ति और पूजा या अर्जना में अभेद माना जाने लगा। मन्दिरों में जाना भगवान पर दीप, अर्ध्य आदि चढाना, मूर्ति की सेवा करना और उसकी आरती आदि उतारना भक्ति के अभिन्न अंग माने जाने लगे। परन्तु क्रमशः कबीर और तुलसी (विनय पत्रिका) के निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भक्तों की दृष्टि में सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति में कितनी समानता है।

(अ) ऐसी आरती त्रिभुवन तारै, तेज पुंज तहां प्रान उतारै।
पाती पंच पुहुप करि पूजा, देव निरांजन और न दूजा।
तनमन सीस समरपन कीन्हां, प्रकट ज्योति तहां आतम लीगं।
दीपक ग्यांन सबद धुनि घंटा, परम पुरिख तहां देव अनंता।
परम परकास सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा।।

(आ) ऐसी आरती राम रघुवीर की करहि मन।
हरन दुःख द्वन्द्व गोविन्द आनन्द धन।।
अचरचर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति वासना धुप दीजै।
दीप निज बोथ गत कोह—मद—मोहःतक प्रौढ अभिमान चित्रवृत्ति छीजै।।
भाव अतिसय बिसद प्रवर—नैवेद्य सुत्र श्री रमन परमं—सन्तोषकारी।
प्रेम तांबूल, गतसूल संसय सकल, विपुल—भव—वासना—बीज—हारी।।
असुभ—सुभ कर्म घृत—पूर्ण दस वर्तिका, त्याग—पावक सतोगुण प्रकासं।
भगति—वैराग्य—विज्ञान—दीपावली आदि नीराजनं जगनिवासं।।
विमल—हृदि—भवन कृत संगति—पयंक भुभ सयन विस्राम श्री राम राया।
क्षमा करूना प्रमुख तज परिचारिका, पन्त हरि तत्र नहिं भेद माया।।
यहै आरती निरत सनकादि स्रुति सेष सिव देवरिषि तत्वदरसी।
करै सोह तरै, परिहरै कामादि मल बदलि इति अमलमति दा तुलसी।।

ऊपर के दोनों उदाहरणों में भक्ति के अनुभूति—पक्ष को ही प्रधान रूप से चित्रित किया गया है। सच्ची भक्ति का संबंध हृदय से है। बाहरी पूजा विधान से नही। यह बात पाण्डित्य और शास्त्राभ्यास से रहित कबीर दास के लिए भी उत्नी ही महत्वपूर्ण है जितनी की विद्वान और शास्त्रों के ज्ञाता भक्त तुलसीदास क लिए। दोनों ने ही आराध्य देव के इन गुणों का तेज पुंज 'निंजन' 'परम पुरिख' 'अचरचर रूप' 'सर्वगत' 'सर्वदा बसत' आदि का उल्लेख किया है। जो निर्गुण की व्याख्या में दिये जाते हैं। कबीरदा ने 'दीपक ज्ञान' का उल्लेख किया है। जो तुलसीदस ने 'भक्ति—वैराग्य' विज्ञान—दीपावली का उल्लेख किया है। उक्त उदाहरणों में 'निर्गुण राम' 'जपहु रे भाई' कहने वाले कबीरदास में और दशरथ नन्दन भगवान रामचन्द्र के उपासक तुलसीदास में अदभुत समानता पायी जाती है। चाहे 'दशरथ—सुत' आराध्य हो चाहे 'राम नाम का मरम हो आना' दोनों ही स्थितियों में भक्ति की अनुभूति में बुनियाद समानता पायी जाती है। यदि ब्रहम के साकार और निराकार रूपों में गुणों की समानता है और भक्ति पद्धति में इन समान गुणों की स्वीकृति भी हो जाती है तो निर्गण की भक्ति को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नही हो सकती।

सगुणोपासक तुलसी दास के लिए भी निर्गण की सत्ता अमान्य नही है। इतना ही नही वे तो भक्ति के लिए दोनों रूपों के ध्यान को अनिवार्य मानते है। अराध्य देव के निर्गुण रूप को समझे बिना सगुण भक्ति भी सम्भव नही है।

हिय निर्गुन, नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।

मनहुँ परट–संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

इसका कारण स्पष्ट है, यहा आराध्य गोचर राम ही नही है। भक्त के लिए आवश्यक है कि वह अवतार रूप राम के उन गुणों का भी ध्यान करे जो उनके सहज और नैसर्गिक गुण है। इसलिए तुलसी दास ने ''विनय पत्रिका'' में राम के गुणों का उल्लेख किया है। जो वस्तुतः निर्गुण ब्रहम के गुण है।

जिस प्रकार सगुण भक्ति के लिए निर्गुण की स्वीकृति आवश्यक है। उसी प्रकार निर्गुण भक्ति के लिए भी सगुण की आंशिक स्वीकृति अनिवार्य है। कबीर के राम ''दशरथ–सुत'' नही है पर वे अपने निगुर्ण आराध्य की भक्ति के पदों में उसके सगुण या मूर्त पक्ष की और भी इंगित करते है।

उन प्रसंगों का सम्बन्धें का उल्लेख करते हैं जिसका वर्णन सगुण भक्तों ने भी किया है।

निर्गुण राम चिरगुन राम जपहु रे भाई अविगत की गति लखी न जाई।
चारि बेद जाकै सुमृत पुरानां, नॉ व्याकरनां मरम न जाना।
सेस नाग जाकै गरड़ समानां, चरन केवल कंवला नही जाना।
कहै कबीर जाकै भेदै नाही, जिन जन बैठे हरि की छांही।।

यहॉ 'शेष नाग' 'गरूड़' 'कमला' आदि के उल्लेख में कबीरदास सगुण रूप के प्रसंगों की ओर संकेत करते प्रतीत होते है। सगुण भक्ति में निर्गुण ब्रहम के विशेषणों –'अद्वैत' 'अकल' 'ग्यान–गोतीत' आदि– का उल्लेख और निर्गुण भक्ति में 'शेषनाग' 'गरूड' 'कमला' प्रभूति सगुण के प्रसंगों का उल्लेख आकस्मिक नही है वरन् इससे निर्गुण भक्ति और सगुण की तथा ज्ञान–मार्ग और भक्ति मार्ग के बीच की मूलभूत समानता प्रकाशित होती है। जिस प्रकार भक्ति या राग के मार्ग पर चलने वाले के लिए सत्य–ज्ञान का महत्व है। उसी प्रकार ज्ञान के मार्ग पर चलने वाले को 'राग' या आराध्य से तादात्म्य की अनुभूति महत्वपूर्ण है। दोनों र्माग परस्पर घनिष्ट रूप से सम्बद्ध है।

निर्गुण भक्ति की मान्यता के बारे में जो सन्देह व्यक्त किया जाता है। उसका प्रधान कारण है– मध्यकालीन साधना का एकांकी या एकपक्षीय विवेचन प्रायः साधना के विविध मार्गो या रूपों– निचुन्तिमार्ग और प्रवृत्तिमार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति और रहस्यवाद आदि का विवेचन करते हुए यह सहज ही स्वीकार कर लिया जाता है। इस तरह की

मान्यता के ऐतिहासिक कारण है। शंकराचार्य के ज्ञान और भक्ति तथा निर्गुण और सगुण के विरोध की स्थापना करते हुए निर्गुण से ज्ञान को सम्बद्ध किया है और निर्गुण ब्रहम और ज्ञान–साधना को ही परम सत्य के रूप में स्वीकार किया है। उनके मतानुसार सगुण अर्थात ईश्वर और भक्ति दोनों ही माया के अन्तर्गत आते हैं। उन्होने भक्ति को विद्या माया मानकर उसके आंशिक को तो स्वीकार किया है। किन्तु सगुण भक्ति की यह स्वीकृति परम सत्य नही है। और स्पष्ट ही जो साधक परम सत्य–निर्गुण अद्धैत ब्रहम–की अनुभूति करना चाहता है। उसे भक्ति को स्वीकार करना होगा।

शंकराचार्य के विरोध में आचार्य रामानुज आचार्य बल्लभ आदि ने इसकी गम्भीर व्याख्याऐं करते हुए भक्ति को ही परम सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए सगुण रूपों की राम कृष्ण आदि की भी प्रतिष्ठा की शंकराचार्य और इन वैष्णव आचार्यो की इस परस्पर विरोधी दृष्टि और सत्य संबंधी मान्यता का प्रभाव यह हुआ कि ब्रहम के निर्गुण रूप और सगुण रूप में विरोध माना जाने लगा। जो न केवल ज्ञान (वैराग्य, निवृत्ति) और भक्ति (राग, प्रवृत्ति) के विरोध के रूप में समझा जाने लगा। अपितु निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति के विरोध के रूप में भी माना गया।

यहॉ ध्यान देने योग्य बात यह है कि ज्ञानमार्ग तो आचार्य शंकर जैसे मेघावी आचार्यो ने प्रतिष्ठित किया था। और इसका आराम्भिक रूप उपनिषदों में भी मिल जाता है। इस लिए ज्ञान मार्ग की सत्ता के बारे में किसी को सन्देह नही हुआ। किन्तु निर्गुण भक्ति की स्थापना में किसी ऐसे मेघावी आचार्य का योगदान नही रहा और निर्गुण को ज्ञान–मार्ग से सम्बद्ध रूप में समझने के कारण निर्गुण भक्ति की सत्ता का ही सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा।

सामान्यतः यह समझा जाता था कि भक्ति का सम्बन्ध तो ब्रहम के सगुण रूप के साथ है और निर्गुण मात्र का ज्ञान का विषय है। इस लिए निर्गुण भक्ति का स्वीकार करने में भी कठिनाई हुई। सगुण भक्ति की धारा इतनी शक्ति और व्यापकता के साथ उमड़ी कि यह तथ्य विस्मृत सा ही हो गया कि भक्ति के विविध सम्प्रदायों के मूल में गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्त है।

उदाहरण के लिए आचार्य रामानुज ने प्रस्थात्रयी की विशद व्याख्याओं में चिद्चिद् विशिष्ट ब्रहम की स्थापना की। जिसके अनुसार आत्मा और पदार्थ ब्रहम से उस प्रकार संयुक्त है जैसे विशेषण विशेष्य के साथ होते हैं। राम भक्ति के आकर्षण ने जनता को सहज ही अपने में अनुरक्त कर लिया और दस प्रकिया में राम भक्ति का दार्शनिक आधार पिछड़ गया। ऐसी ही दशा बल्लभ निम्बार्क आदि आचार्यो के सम्प्रदायों की भी हुई। परन्तु यहॉ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि

शास्त्रज्ञ भक्तों एवं दार्शनिको की रचनाओं में ज्ञान एवं भक्ति तथा निर्गुण एवं सगुण भक्ति की समानता के भी संकेत मिलते है। इसका कारण यह है कि इन सभी साधना–पद्धतियों का स्रोत तो प्रस्थानत्रयी है।

उदाहरण के लिए उपनिषदों में जहॉ ध्यान एवं उपासना के महत्व का वर्णन है। जहॉ निर्गुण ब्रहम के स्वरूप को 'नेति–नेति' की प्रकिया से स्पष्ट करने का प्रयास है। वहॉ साथ ही निर्गुण ब्रहम की भक्त वत्सलता का संकेत भी 'मुण्डकोपनिषद्' के इस प्रसिद्ध श्लोक में मिलता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमे वैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुस्वाम्।।

अर्थात यह आत्मा न तो प्रवचन से प्राप्त हो सकती है, न शुद्ध बुद्धि से और न विशेष श्रवण से। जिसको यह परण करता है, उसी को यह प्राप्त हो सकता है और उसी के प्रति यह अपने आपको व्यक्त करता है। बल्लभाचार्य की पुष्टिमार्गीय सगुण भक्ति का बीज भी निर्गुण ब्रहम के स्वरूप का वर्णन करने वाला यह श्लोक ही है।

निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति के आलम्बन के स्वरूप में स्थूल अन्तर तो यह है कि निर्गुण भक्ति का आलम्बन निराकार और अगोचर है तथा सगुण भक्ति का आलम्बन साकार एवं गोचर है। किन्तु यह साकार एवं गोचर आलम्बन अपने आकार के अतिरिक्त अन्य गुणों में निराकार से समानता रखता है। कबीर एवं तुलसी से उदाहरण देकर पहले यह बात स्पष्ट की जा चुकी है। भक्ति की इन दोनों पद्धतियों में और भी कई समान गुण दिखायी देते हैं। निर्गुण भक्ति में गुरू को वही महत्व प्राप्त है जो साधना के अन्य रूपों – ज्ञान मार्ग सगुण भक्ति धारा या रहस्यवाद में प्राप्त है। सदगुरू की कृपा के बिना साधक एक पग भी नही चल सकता। निर्गुण भक्ति में नाम स्मरण को भी विशेष महत्व दिया गया है। सगुण भक्त तुलसीदास नाम की महिमा का वर्णन करते हुए उसे राम से भी अधिक महत्वपूर्ण मानते है। और कबीर की दृष्टि में भी पण्डित नही है जिसने प्रेम के 'ढाई अक्षर' पढ लिये है। निर्गुण भक्ति में तो जप की अवस्था से ऊपर 'अजपा जाप' की अवस्था स्वीकार की गयी है। जिसमें सिद्ध पुरूष 'अनहत' शब्द के समान बिना किसी प्रयास के निरन्तर नाम स्मरण करते रहते हैं। निर्गुण भक्ति में दैन्य की भावना को भी नही महत्व प्राप्त है। जो सगुण भक्ति में दिखायी देता है। कबीर और तुलसी ''विनय पत्रिका'' के दो पदों का अनुशीलन इस दृष्टि से प्र्याप्त होगा।

मधो मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति होत नही साधी।।
कारनि कवन आइ जग जनम्यां, जनमि कवन सचु पाया।
भौजल तिरण चरण च्यंतामणि, ता चित घड़ी न लाया।।
पर निंद्या, पर धन, पर दारा, पर अपवादै सूरा।
ताथै आवागमन होइ फुनि, ता पर संग न चूरा।।
काम क्रोध माया मद मंछर, एसन्तति हम मांही।
दया धरम ग्यांन गुरू सेवा, ए प्रभु सुपिनै नांही।।
तुम कृपाल दयाल दमोदर, भगत–बहुल भौ–हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासमि करौ हमारी।।

सारांश

निर्गण भक्ति और रहस्यवादी प्रेम पद्धति की सीमा भी नही है तो ज्ञान मार्ग की है। निर्गुण को ही आराध्य के रूप में स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि साधना की इन दोनों पद्धतियों की स्वीकृति सीमित क्षेत्र के भीतर ही रही। जब सगुण भक्ति या प्रेम का आलम्बन के रूप में ग्रहण किया जा सकता है तो फिर निर्गुण की और आकर्षित होने की सम्भावना अत्यन्त सीमित हो जाती है। जिस प्रकार अधिकांश व्यक्ति ज्ञान–मार्ग पर नही चल सकते उसी प्रकार वे निर्गुण भक्ति की और रहस्यवादी प्रेम–साधना को भी स्वीकार नही कर सकते। लेकिन यह निर्विवाद है कि जिस प्रकार ज्ञान र्माग साधना का एक विशिष्ट रूप है। उसी प्रकार निर्गुण भक्ति और रहस्यवादी प्रेम पद्धति भी साधना के विशिष्ट रूप हैं।

सन्दर्भ संकेत

1. **कबीर ग्रन्थावली**
रामकिशोर शर्मा हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
(लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद)

2. **हिन्दी साहित्य का इतिहास**
आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोक भारती प्रकाशन
पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग
महात्मा गॉधी मार्ग इलाहाबाद –01